



एकात्म

संस्करण १, अंक १, चैत्र मास, २०१८

National Research
& Journal Publication

समीक्षा लेख

राजनीति: दीनदयाल उपाध्याय और भारतीय राजनीति

डा०. ममता बिश्नोई एवं डा० आर सी त्रिवेदी

वाणिज्य विभाग, डी ए वी कालेज, कानपुर

सारांश

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का जन्म उत्तर प्रदेश स्थित मथुरा जिले के उसी गांव नगला चन्द्रभान में 25 सितम्बर सन् 1916 को हुआ था। पंडित जी ने सनातन भारतीय अर्थ चिंतन को एक युगानुकूल नाम दिया और उसे सहता एवं सरलता के साथ लोगों को समझाने का प्रयास किया। हालांकि अपने जीवन काल में उन्होंने इस चिंतन पर व्यापक व्याख्या प्रस्तुत नहीं की लेकिन जो उन्होंने दिया वह भारतीय राजनीतिक अर्थ चिंतन की दिशा में मील का पत्थर साबित हो गया।

मुख्य शब्द : एकात्म, मानववादी दर्शन, मानवता, दीनदयाल उपाध्याय ।

दीनदयाल के एकात्म चिंतन के आधिकारिक अध्येता एवं गुजरात के वर्तमान राज्यपाल ओमप्रकाश कोहली कहते हैं – “पुनर्जागरण के बाद भारत में तीन स्वदेशी राजनीतिक चिंतन का जो विकास हुआ है उसका आधार कहीं न कहीं भारत की पुरातन परम्परा का अवशेष है। इन तीनों में संस्कृति और धर्म का व्यापक स्थान है।

उन तीन राजनीतिक आर्थिक चिंतन में गांधी, लोहिया और दीनदयाल का नाम आता है। इन तीनों चिंतन में भौतिक समृद्धि के साथ ही साथ आध्यात्मिक उन्नयन का भी समावेश है। यह तीनों चिंतन व्यक्ति को पूर्ण रूप से विकसित करने का चिंतन है। तीनों ही चिंतन को समान हैं, लेकिन दीनदयाल जी का कालखंड बाद तक रहा, और उनको अपने चिंतन को विकसित करने का थोड़ा समय भी ज्यादा मिला, इसलिए इसे अन्य दो की अपेक्षा दीनदयाल जी को आधुनिक कहा जा सकता है। साथ ही जो उन दोनों चिंतनों में थोड़ी बहुत खामी थी उसे दीनदयाल जी ने अपने चिंतन में दूर करने का प्रयास किया था। स्वदेशी के मुद्दे पर दीनदयाल जी विदेशी वस्तुओं को स्वदेशानुकूल करने के पक्ष में थे पर गांधी जी और लोहिया जी के चिंतन में इसका आभाव दिखता है। गांधी और लोहिया पुरातन चीजों को जिसका आधुनिक युग में कोई स्थान नहीं रहा उसको त्यागने की बात कही है जबकि दीनदयाल जी उसे युगानुकूल बनाने की बात करते हैं। इसी प्रकार अन्त्योदय का भी सिद्धांत दीनदयाल जी का अभिनव है। इस प्रकार अन्य दो चिंतनों से दीनदयाल जी के चिंतन को ज्यादा परिपक्व कहा जा सकता है।



जीवन परिचय की दृष्टि से देखें तो दीनदयाल जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूर्णकालिक प्रचारक थे। इस क्रम में उन्हें अखिल भारतीय जनसंघ का संस्थापक सदस्य और बाद में अध्यक्ष भी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जनसंघ के काल में यह तय करना था कि आखिर भारत का स्वदेशी अर्थ और राजनीतिक चिंतन क्या हो? दीनदयाल जी इस दिशा में बढ़े और उन्होंने खालिस स्वदेशी राजनीतिक चिंतन दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। हालांकि इस चिंतन का व्यापक प्रचार नहीं हो पाया है लेकिन इसकी गहराई बेहद अंदर तक है। इस चिंतन में एक व्यक्ति किस प्रकार विश्वव्यापी यह साबित किया गया है। व्यक्ति से लेकर विश्व तक हर की स्वतंत्रता के साथ हर की अहमियत का ख्याल रखा गया है।

साठ के दशक में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तात्कालिक सरसंघचालक यानि प्रधान माधव राव सदाशिव गोलवलकर से महान स्वतंत्रता सेनानी संवित सरकार के मंत्री रहे डा. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मुलाकात होती है और मुखर्जी एक राजनीतिक पार्टी बनाने की बात की। उस समय गोलवलकर के मन में भी खालिस भारतीय चिंतन की राजनीतिक पार्टी बनाने जैसा कुछ चल रहा था। फिर राष्ट्रीय स्वयंसेव संघ के प्रचारक पंडित दीनदयाल उपाध्याय, नाना जी देशमुख, अटल विहारी वाजपेयी, आदरणीय बलराज मधोक आदि डॉ. मुखर्जी के साथ हो लिए और एक राजनीतिक दल अस्तित्व में आया, जिसका नाम रखा गया अखिल भारतीय जनसंघ। डॉ. मुखर्जी उसके अध्यक्ष बनाए गए। इसके बाद इतिहासिक कश्मीर आन्दोलन में डॉ. मुखर्जी की रहस्यमय मृत्यु हो गयी और फिर पंडित दीनदयाल जी के उपर जनसंघ का पूरा भार आ गया।

हालांकि कि वे लम्बे समय तक जनसंघ के महामंत्री ही रहे लेकिन जनसंघ को दिशा देने में उनकी भूमिका बेहद महत्वपूर्ण थी। दीनदयाल जी चुनाव तो लड़े लेकिन कभी जीत नहीं पाए। सन् 1967 में जब डॉ. राममनोहर लोहिया जी के साथ गठबंधन बना तो दीनदयाल जी भी चुनाव लड़े। उन्हें कहा गया कि ब्राह्मणों की सभा को आप अलग से संबोधित कर दीजिए तो उन्होंने साफ मना कर दिया और कहा "इससे दीनदयाल तो जीत जाएगा लेकिन जनसंघ हार जाएगी"। इस मूल्य और आदर्श को लेकर दीनदयाल जी ने राजनीति की।

फिर वो वक्त आया जब मुगलसराय से पटना जाने के क्रम में उन्हें चलती ट्रेन में हत्या कर दी गयी। 11 फरवरी, सन् 1968 का वह दिन था। उस दिन भारत और भारतीयता के महान चिंतन पंडित दीनदयाल जी की हत्या कर दी गयी। वह हत्या आज भी रहस्य बना हुआ है। बिल्कुल उसी तरह जिस तरह अन्य भारतीय राजनेताओं की हत्या हुयी। दीनदयाल जी निःसंदेह महान चिन्तक और संगठनकर्ता थे। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानववाद जैसी प्रगतिशील विचारधारा दी।

उपाध्यायजी नितान्त सरल और सौम्य स्वभाव के व्यक्ति थे। राजनीति के अतिरिक्त साहित्य में भी उनकी गहरी अभिरुचि थी। उनके हिंदी और अंग्रेजी के लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं



में प्रकाशित होते रहते थे। केवल एक बैठक में ही उन्होंने चन्द्रगुप्त नाटक लिख डाला था। इनके पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय था। माता रामप्यारी धार्मिक वृत्ति की थीं।

रेल की नौकरी होने के कारण उनके पिता का अधिक समय बाहर ही बीतता था। कभी-कभी छुट्टी मिलने पर ही घर आते थे। थोड़े समय बाद ही दीनदयाल के भाई ने जन्म लिया जिसका नाम शिवदयाल रखा गया। पिता भगवती प्रसाद ने बच्चों को ननिहाल भेज दिया। उस समय उनके नाना चुन्नीलाल शुक्ल धनकिया में स्टेशन मास्टर थे। मामा का परिवार बहुत बड़ा था। दीनदयाल अपने ममेरे भाइयों के साथ खाते खेलते बड़े हुए।

तीन वर्ष की मासूम उम्र में दीनदयाल पिता के प्यार से वंचित हो गये। पति की मृत्यु से माँ रामप्यारी को अपना जीवन अंधकारमय लगने लगा। वे अत्यधिक बीमार रहने लगीं। उन्हें क्षय रोग लग गया। 08 अगस्त 1924 को रामप्यारी बच्चों को अकेला छोड़ ईश्वर को प्यारी हो गयीं। 07 वर्ष की कोमल अवस्था में दीनदयाल माता-पिता के प्यार से वंचित हो गये।

उपाध्याय जी ने पिलानी, आगरा तथा प्रयाग में शिक्षा प्राप्त की। बीएससी. बीटी करने के बाद भी उन्होंने नौकरी नहीं की। छात्र जीवन से ही वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सक्रिय कार्यकर्ता हो गये थे। अतः कालेज छोड़ने के तुरन्त बाद वे उक्त संस्था के प्रचारक बन गये और एकनिष्ठ भाव से संघ का संगठन कार्य करने लगे। उपाध्यायजी नितान्त सरल और सौम्य स्वभाव के व्यक्ति थे।

सन् 1951 में अखिल भारतीय जनसंघ का निर्माण होने पर वे उसके संगठन मन्त्री बनाये गये। दो वर्ष बाद सन् 1953 में उपाध्यायजी अखिल भारतीय जनसंघ के महामन्त्री निर्वाचित हुए और लगभग 15 वर्ष तक इस पद पर रहकर उन्होंने अपने दल की अमूल्य सेवा की। कालीकट अधिवेशन (दिसम्बर 1967) में वे अखिल भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

विलक्षण बुद्धि, सरल व्यक्तित्व एवं नेतृत्व के अनगिनत गुणों के स्वामी भारतीय राजनीतिक क्षितिज के इस प्रकाशमान सूर्य ने भारतवर्ष में समतामूलक राजनीतिक विचारधारा का प्रचार एवं प्रोत्साहन करते हुए सिर्फ 52 साल के उम्र में अपने प्राण राष्ट्र को समर्पित कर दिए। अनाकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी दीनदयालजी उच्च-कोटि के दार्शनिक थे किसी प्रकार का भौतिक माया-मोह उन्हें छू तक नहीं सका।

जनसंघ के राष्ट्रजीवन दर्शन के निर्माता दीनदयालजी का उद्देश्य स्वतंत्रता की पुनरचना के प्रयासों के लिए विशुद्ध भारतीय तत्व-दृष्टी प्रदान करना था। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानववाद जैसी प्रगतिशील विचारधारा दी। दीनदयालजी को जनसंघ के आर्थिक नीति के रचनाकार बताया जाता है। आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य समान्य मानव का सुख है या उनका विचार



था। विचार-स्वातंत्र्य के इस युग में मानव कल्याण के लिए अनेक विचारधारा को पनपने का अवसर मिला है। इसमें साम्यवाद, पूंजीवाद, अन्त्योदय, सर्वोदय आदि मुख्य हैं। किन्तु चराचर जगत को सन्तुलित, स्वस्थ व सुंदर बनाकर मनुष्य मात्र पूर्णता की ओर ले जा सकने वाला एकमात्र प्रक्रम सनातन धर्म द्वारा प्रतिपादित जीवन दृष्टि विज्ञान, जीवन कला व जीवन दर्शन है।

संस्कृतिनिष्ठा दीनदयाल जी के द्वारा निर्मित राजनैतिक जीवनदर्शन का पहला सुत्र है उनके शब्दों में – “भारत में रहनेवाला और इसके प्रति ममत्व की भावना रखने वाला मानव समूह एक जन हैं। उनकी जीवन प्रणाली, कला, साहित्य, दर्शन सब भारतीय संस्कृति है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का आधार यह संस्कृति है। इस संस्कृतिमें निष्ठा रहे तभी भारत एकात्म रहेगा।”

“वसुधैव कुटुम्बकम्” हमारी सभ्यता से प्रचलित है। इसी के अनुसार भारत में सभी धर्मों को समान अधिकार प्राप्त हैं। संस्कृति से किसी व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र आदि की वे बातें जो उनके मन, रुचि, आचार, विचार, कला-कौशल और सभ्यता का सूचक होता है पर विचार होता है। दो शब्दों में कहें तो यह जीवन जीने की शैली है। भारतीय सरकारी राज्य पत्र (गजट) इतिहास व संस्कृति संस्करण में यह स्पष्ट वर्णन है कि ‘हिन्दुत्व’ और ‘हिंदूइज्म’ एक ही शब्द हैं तथा यह भारत के संस्कृति और सभ्यता का सूचक है।

उपाध्यायजी पत्रकार तो थे ही चिन्तक और लेखक भी थे। उनकी असामयिक मृत्यु से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि जिस धारा में वह भारतीय राजनीति को ले जाना चाहते थे वह धारा हिन्दुत्व की थी जिसका संकेत उन्होंने अपनी कुछ कृतियों में ही दे दिया था। तभी तो कालीकट अधिवेशन के बाद विश्व भर के मीडिया का ध्यान उनकी ओर गया। दीनदयाल जी ने, दो योजनाएँ, राजनीतिक डायरी, भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन, सम्राट चन्द्रगुप्त, जगद्गुरु शंकराचार्य, और एकात्म मानववाद व राष्ट्र जीवन की दिशा जैसी कालजयी रचनाएं दुनिया को दी।

राजनीति उनके लिए न कैरियर थी, न ख्याति का साधन था और न ही ताकत हासिल करने का उपकरण। वे जातिवाद मुक्त राजनीति के प्रवक्ता के रूप में चुनाव में आए थे। वे गरीब, किसान, मजदूर और हाशिये के लोगों के उत्थान की बात कर रहे थे और सामंती संस्कृति पर प्रहार भी कर रहे थे।

क्या पंडित दीनदयाल उपाध्याय की महत्ता का कारण भारतीय जनता पार्टी का केंद्र में सत्तारूढ़ होना है? यह बात कई लोगों के मन में आना स्वाभाविक है क्योंकि इसके पूर्व ऐसे लोगों ने भाषणों और लेखों में छिटपुट रूप से उपाध्याय का जिक्र सुना होगा। दीनदयाल उपाध्याय पर किसी भी विमर्श में इस सवाल का जवाब अगर निहित नहीं है, तो उसकी प्रासंगिकता अपूर्ण रह जाएगी।



संघ की गतिविधियों से परे उनका सार्वजनिक जीवन मात्र सत्रह-अठारह (1950-1968) वर्षों का था। तब भारतीय राजनीति पर ही नहीं, देश के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन पर भी कांग्रेस का प्रभाव था। दूसरी विचारधारा जो अपने उभार पर थी उसका नेतृत्व कम्युनिस्ट सोशलिस्ट पार्टियां कर रही थीं। दोनों का संयुक्त मतों का प्रतिशत सोलह फीसद के करीब 1962 के लोकसभा चुनाव में था। तीसरी श्रेणी हिंदू महासभा, राम राज्य परिषद और स्वतंत्र पार्टी जैसे दलों की थी।

इस राजनीतिक परिवेश और प्रतिद्वंद्विता के बीच दीनदयाल उपाध्याय ने जनसंघ को अलग वैचारिक पहचान दी। लेकिन उनके द्वारा वैकल्पिक राजनीतिक संस्कृति को स्थापित करना इससे कम महत्वपूर्ण नहीं था। इस प्रक्रिया में उन्होंने भारतीय समाज और राजनीति के व्यापक प्रश्नों को छूने का प्रयास किया था, जो उन्हें वर्तमान ही नहीं, पीढ़ियों के लिए भी प्रासंगिक बना देता है। पूरी दुनिया में विचारधारा की लड़ाई में वामपंथ-दक्षिणपंथ का श्रेणीकरण (विभाजन) प्रभावी रहा है। इसने सामाजिक-आर्थिक प्रश्नों पर वैचारिक अस्पृश्यता, कट्टरता और विवेकहीन राजनीतिक संघर्ष की संस्कृति को जन्म दिया है। यह यूरोप के राजनीतिक अनुभवों और विकास की प्रक्रिया से उपजी अवधारणा थी, जिसे भारतीय राजनीति के शैक्षणिक और वैचारिक क्षेत्र में अंधभक्ति के आधार पर स्वीकार कर लिया गया था। जनसंघ की स्थापना के बाद उसे भी एक नए दक्षिणपंथी संगठन के रूप में देखा गया।

दीनदयाल उपाध्याय संभवतः पहले भारतीय राजनीतिक विचारक थे, जिन्होंने वाम-दक्षिण विभाजन को कृत्रिम और लोकतांत्रिक विकास में बाधक मान कर अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कम्युनिस्टों के आयातित विचार को अभारतीय करार दिया तो हिंदू महासभा, राम राज्य परिषद और स्वतंत्र पार्टी के जनसंघ के साथ विलय को भी खारिज कर दिया। यह विलय भी तब लगभग सोलह प्रतिशत से अधिक मतों का हकदार बन जाता। उपाध्याय के लिए राजनीतिक अस्तित्व से अधिक राजनीतिक अस्मिता महत्वपूर्ण थी। इसका परिचय तो उनके प्रभाव में जनसंघ ने 1953 में ही दे दिया था। राजस्थान में जागीरदारी उन्मूलन विधेयक लाया गया था। जनसंघ के पास विधानसभा में आठ विधायक थे। उनमें छह विधायक इस विधेयक के विरोधी थे। उसके सामने यह कठिन प्रश्न था। छह विधायकों को पार्टी से निकाल दिया गया। वे विचार को कर्मकांड नहीं मानते थे। इसलिए जब दलों के विलय का प्रश्न आया तो उन्होंने मौलिक वैचारिक प्रश्नों को उनके सामने रखा।

हिंदू महासभा से उन्होंने पूछा कि जिन कारणों से डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी उससे अलग हुए थे, क्या वे कारण समाप्त हो गए? वह कारण था गैर-हिंदुओं के महासभा में प्रवेश का। विलय का यह प्रस्ताव स्वयमेव ही निरस्त हो गया। इसी प्रकार उन्होंने राम राज्य परिषद के 'सामाजिक यथास्थितिवाद' के सिद्धांत को जनसंघ के दृष्टिकोण के प्रतिकूल मानते हुए कहा कि 'राम राज्य परिषद करपात्रीजी की कुटिया से नहीं संचालित होकर महलों से संचालित होती है।' स्वतंत्र पार्टी के साथ जनसंघ के विलय का लंबा प्रयास



चला। पर स्वतंत्र पार्टी की आर्थिक विचारधारा से उपाध्याय पूर्ण रूप से असहमत थे। उन्होंने कहा कि यह 'दलाल स्ट्रीट की पार्टी' मानी जाती है और जिन कारणों और कार्यक्रमों की बुनियाद पर इसकी स्थापना हुई वह जनसंघ की विचारधारा से मेल नहीं खाती है।

वे कम्युनिस्टों के पूर्ण राष्ट्रीयकरण और स्वतंत्र पार्टी के पूर्ण बाजारीकरण दोनों को अव्यावहारिक और वैचारिक कट्टरता मानते थे। इक्कीसवीं शताब्दी में दुनिया के चिंतक वामपंथ-दक्षिणपंथ विभाजन को भ्रमित करने वाला और अनुपयोगी मानने लगे हैं। उपाध्याय ने नया श्रेणीकरण किया था, वह था 'परिवर्तनेच्छु' और 'अपरिवर्तनेच्छु'। यानी वे जो सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के समर्थक हैं और दूसरा जो यथास्थितिवादी हैं। उन्होंने दिसंबर, 1967 में कालिकट (केरल) में जनसंघ के अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि सामाजिक-आर्थिक समानता की लड़ाई पर किसी विचारधारा का एकाधिकार नहीं है। उन्होंने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और समानतामूलक समाज का एक मजबूत वैचारिक धरातल जनसंघ को प्रदान किया था।

स्वतंत्रता के बाद सत्ता तो हस्तांतरित हुई, पर राजनीतिक संरचना और सोच अपरिवर्तित रही। उपाध्याय ने इसका कारण माना कि किसी भी प्रकार की सोच-समझ या विचार के प्रतिपादन में यूरोप केंद्रित रहने की हमारी आदत बन गई है। राजनीति को वे अपने आप में स्वायत्त नहीं मानते थे। राजनीति का जब संस्कृति, समाज और आध्यात्म से जीवंत संबंध होता है, तभी वह राजनीति उद्देश्यमूलक और संवेदनशील हो सकती है। जो प्रशासनिक और विकास की संरचना जनजातियों के लिए आवश्यक है, वही संरचना दूसरे वर्ग के लिए आवश्यक हो यह जरूरी नहीं है। गांव की विषमता और जाति की जड़ता को समाप्त करने के लिए नई भागीदारी युक्त प्रशासनिक संरचना पर उन्होंने जोर दिया। वे मूलतः व्यवस्था परिवर्तन के हिमायती थे।

राजनीतिक जीवन से बाहर रह कर आदर्श की बात करना आसान है और उसके केंद्र में रह कर आदर्श पर अडिग रहना कठिन है। राजनीति में चुनाव अग्निपरीक्षा के समान होता है, जिसमें सामाजिक यथार्थ और भविष्य के समाज की कल्पना के लिए बनाए गए आदर्शों के बीच टकराव होता है। इस संदर्भ में 1963 में चार लोकसभा क्षेत्रों के उपचुनाव में उपाध्याय की भूमिका उल्लेखनीय है। विपक्ष के चार दिग्गज कांग्रेस को चुनौती दे रहे थे। ये थे राजकोट से स्वतंत्र पार्टी के मीनू मसानी, उत्तर प्रदेश में फर्रुखाबाद से समाजवादी राममनोहर लोहिया, अमरोहा से जेबी कृपलानी और जौनपुर से दीनदयाल उपाध्याय।

लोहिया 1962 के चुनाव में नेहरू के खिलाफ फूलपुर से चुनाव लड़ चुके थे। नेहरू डॉ. लोहिया और कृपलानी को संसद में आने से रोकने के लिए कटिबद्ध थे। तब दीनदयाल उपाध्याय ने नेहरू और कांग्रेस की एकाधिकार प्रवृत्ति, 'एक दल, एक नेता, एक सिद्धांत' को लोकतंत्र के लिए घातक माना। लोहिया जैसे राष्ट्रीय नेता को जाति के आधार पर अपना क्षेत्र चुनना पड़ा। इस पर क्षोभ प्रकट करते हुए वे उनके समर्थन में प्रचार करने



गए। नेहरू ने कृपलानी को पराजित करने के लिए 'वोट बैंक' की राजनीति का श्रीगणेश अमरोहा से ही किया था। कांग्रेस की जिला समिति से लेकर संसदीय समिति ने रामशरण को अपना उम्मीदवार बनाया, तो नेहरू ने अंतिम समय में दलीय फैसले को नजरअंदाज करते हुए अपने कैबिनेट के सिंचाई एवं ऊर्जा मंत्री हाफिज मोहम्मद इब्राहिम को उम्मीदवार बना दिया।

उपाध्याय ने कृपलानी की जीत को जनसंघ की नैतिक जिम्मेदारी मानते हुए उनका चुनाव एजेंट तक जनसंघ के नेता रमेश कुमार को बनाया। वे स्वयं राजनीति को तात्कालिक सफलता-विफलता के आईने में नहीं देखते थे। जहां जातिविहीन समाज के प्रवक्ता डॉ. लोहिया जातीय समीकरण के आधार पर फर्रुखाबाद से चुनाव लड़ रहे थे वहीं दीनदयाल उपाध्याय ने जौनपुर में अपने पक्ष के जातीय समीकरण को स्वयं ही अपना विरोधी बना लिया। क्योंकि वे सभाओं में जाति के आधार पर मतदान की निंदा करते हुए उन लोगों से चले जाने की अपील करते थे, जो जाति के आधार पर उनका समर्थन करने आते थे। साठ के दशक के सामंती और यथास्थितिवादी समाज के लिए यह व्यवहार अपच का कारण बना।

राजनीति उनके लिए न कैरियर था, न ख्याति का साधन था और न ही ताकत हासिल करने का उपकरण। वे जातिवाद मुक्त राजनीति के प्रवक्ता के रूप में चुनाव में थे। वे गरीब, किसान, मजदूर और हाशिए के लोगों के उत्थान की बात कर रहे थे और सामंती संस्कृति पर प्रहार भी कर रहे थे। जौनपुर की सीट जनसंघ के ही सांसद की मृत्यु के कारण खाली हुई थी। उन्होंने अपने आदर्शवादी यथार्थ को व्यावहारिक यथार्थ के सामने झुकने नहीं दिया। वे हार गए और संदेश दिया कि 'दीनदयाल हार गया, जनसंघ जीत गया'। वे जीतते तो जौनपुर का चुनाव उल्लेखनीय नहीं होता। वे जिन कारणों और जिस उद्देश्य से हारे उससे यह चुनाव भारतीय राजनीति के इतिहास में रेखांकित हो गया। भले ही राजनीति आज जातीय सांप्रदायिक समीकरणों के दलदल में फंसी हुई है, पर जौनपुर का चुनाव उस बीज की तरह भारतीय उपचेतना में विद्यमान है, जो राजनीति को इस दलदल से निकालने का संकल्प था।

अगर इस सिद्धांत मूल्यों के अध्येता उपाध्याय भारतीय विमर्श का हिस्सा बन पाए तो उसका कारण वे नहीं, बल्कि सर्वसमावेशी होने का ढोंग करने वाली नेहरूवादी-वामपंथी बौद्धिकता रही है, जिसने विमर्श और अध्ययन के क्षेत्रफल को संकुचित और संकीर्ण बनाने का काम किया है। मानवेंद्रनाथ राय का 'रैडिकल ह्यूमनिज्म' तो पाठ्यक्रमों का हिस्सा बना, पर अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के आधार पर जीवन दर्शन को संपूर्णता में देखते हुए जिस एकात्म मानववाद का प्रतिपादन उपाध्याय जी ने किया, उसका उल्लेख भी आवश्यक नहीं समझा गया।

उपाध्याय का विचार और व्यक्तित्व की विलक्षणता को इसी से समझा जा सकता है कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी 'पोलिटिकल डायरी' का जब प्रकाशन हुआ तब उसका



प्राक्कथन कांग्रेस के वरिष्ठ नेता संपूर्णानंद ने लिखा था। संपूर्णानंद ने उनके विचारों में भारतीय लोकतंत्र और राजनीति में परिष्कार का बोध देखा। उनकी पोलिटिकल डायरी पढ़ कर समकालीन भारतीय राजनीति की लघुता का बोध स्वयमेव हो जाता है। क्या उनके राजनीतिक जीवन दर्शन को भारतीय लोकतंत्र और राजनीति की आलोचनात्मक समझ के दायरे से बाहर रखना अनुपयुक्त नहीं था?

सन्दर्भ :

1. आबेराय, सुरेश चन्द्र: 2005 "शिक्षा तकनीकी के तत्व एवं प्रबन्धन", आर0 लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कॉलेज, मेरठ-250001
2. पाठक, पी0डी0 व जी0एस0डी0त्यागी: 2006, "शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-282002
3. पाण्डेय, रामशकल: 2005, द्वितीय संस्करण, "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक" विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-282002
4. पाठक, पी0डी0 व जी0एस0डी0त्यागी: 2006, "शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-282002
5. पाण्डेय, रामशकल: 2005, द्वितीय संस्करण, "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक" विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-282002
6. राठौर, कुसुम लता: 2009, प्रथम संस्करण, "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", आर0लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कॉलेज, मेरठ-250001
7. राय, पारस नाथ: 2007, द्वादशम् संस्करण, "अनुसंधान परिचय", लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा-282002
8. सक्सेना, एन0आर0स्वरूप: 2002, ग्यारहवाँ संस्करण "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक" सूर्या पब्लिकेशन, निकट राजकीय इण्टर कॉलेज, मेरठ-250001
9. सक्सेना, एन0आर0स्वरूप व शिखा चतुर्वेदी: 2007, "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक", आर0लाल बुक डिपो, निकट राजकीय इण्टर कॉलेज, मेरठ-250001
10. अग्रवाल जे0 सी0: 1972 "विद्यालय प्रशासन", आर्य बुक डिपो, करौलबाग, नई दिल्ली-51